मनु

प्रोफेसर अनुपमा कौशिक*, समीर हर्षद पांडे**

सारांश

हिन्दू धर्म का मूल नाम सनातन धर्म है। सनातन का अर्थ है शाश्वत और धर्म का अर्थ है नियम जो 'धारण करने योग्य हैं'– 'धारयति इति धर्मः'। अर्थात सनातन धर्म वो धारण करने योग्य नियम हैं जो हमेशा थे और रहेंगे। सनातन धर्म का विश्वास है कि सब कुछ परम ब्रह्म से निकला है। ब्रह्म ही सभी ऊर्जा का स्रोत है, वो सब कुछ है, वो हमेशा था और हमेशा रहेगा। "ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।" अर्थात वो पूर्ण है, उसमें से पूर्ण भी निकलेगा तो भी पूर्ण ही बचेगा। ब्रह्म से ही ब्रह्माण्ड निकला है। ब्रह्माण्ड निरंतर बन रहा है, बढ़ रहा है, समाप्त हो रहा है और फिर बन रहा है। ये क्रम हमेशा था और हमेशा रहेगा। प्रकृति या माया भी ब्रह्म से ही निकली है। माया में चार युग बार–बार आते हैं– सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग। ब्रह्म से ही आत्मा भी निकलती है। ये आत्मा जब प्रकृति या माया में प्रवेश करती है तो शरीर धारण करती है व कर्म करती है जिसके आधार पर मनुष्य को पुनर्जन्म या मोक्ष मिलता है। आत्मा का अंतिम उद्देश्य ब्रह्म में मिलना या मोक्ष प्राप्ति है। आत्मा तब तक विभिन्न योनियों (मानव, पशु, पक्षी, वनस्पति आदि) में जन्म लेती रहती है जब तक उसे मोक्ष प्राप्त नहीं हो जाता। ये एक लम्बा क्रम है। सनातन धर्म की विभिन्न पुस्तकें व गुरु ये बात समझाते हैं। सनातन धर्म की कोई एक पुस्तक नहीं है। इसके प्रमुख ग्रंथों में वेद, पुराण, उपनिषद, धर्मशास्त्र, इतिहास (रामायण और महाभारत), गीता आदि सम्मिलित हैं। धर्मशास्त्रों या स्मृतियों में एक मनुस्मृति है।

शब्द संकेत : मनु, मनुस्मृति, सनातन धर्म, राज्य, न्याय।

मनुस्मृति

मनुस्मृति को मानवधर्मशास्त्र व मनुसंहिता भी कहते हैं। जब महर्षियों ने मनु से वैदिक श्रौत स्मार्त कर्मों के बारे में बताने की प्रार्थना की तब इसकी रचना की गयी। मनुस्मृति के प्रत्येक अध्याय के अन्त में 'भृगुप्रोक्तायां संहितायां' लेख प्राप्त होता है अर्थात महर्षि भृगु ने मनु से पढ़कर, मनु की आज्ञा से, इसे ऋषियों को पढ़ाया और श्लोक बद्ध किया। (द्विवेदी, 1917: 123) मनु स्वयं कहते हैं कि प्रजापति (ब्रह्मा) ने सृष्टि के पूर्व इस धर्मशास्त्र को बनाकर मुझे उपदेश दिया और भृगु इसे आप लोगों को सुनायेंगे। (द्विवेदी, 1917:13) पंडित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी मानते हैं कि यह अति प्राचीन ग्रन्थ है तथा कालवश इसमें पाठभेद संभव है। मनुस्मृति के रचना काल को लेकर विद्वानों में मतैक्य नही है। स्मरण रहे की सनातन की भारत भूमि एक हजार वर्षों तक क्रूर विदेशी आक्रमणों व विधर्मी शासकों से संघर्षरत रही। इस काल में अनेक मंदिर, गुरुकुल, विश्वविद्यालय व ग्रन्थ नष्ट व भ्रष्ट किये गए। परिणामस्वरुप कई बातों में स्पष्टता नहीं है। मनुस्मृति जैसे जो प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त होते हैं उनके बारे में कई विवाद भी हैं जैसे क्या इसमें क्षेपक जोड़े गए हैं ? या क्या ये पूर्णता में उपलब्ध हैं ? पंडित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी द्वारा हिंदी में अनुवादित मनुस्मृति के सातवें अध्याय में राजधर्म सम्बन्धी और आठवें अध्याय में व्यवहार–निर्णय या न्याय सम्बन्धी विचार दिये गए हैं जो राजनीति शास्त्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। अन्य अध्यायों में, प्रथम अध्याय में जगत की सृष्टि, द्वितीय अध्याय में धर्म का लक्षण, तृतीय अध्याय में विवाह नियम व पंच यज्ञ आदि, चतुर्थ अध्याय में गृहस्थ आश्रम धर्म, पंचम अध्याय में भक्ष्य एवं अभक्ष्य पदार्थ, षष्टम अध्याय में वानप्रस्थ धर्म, नवम अध्याय में स्त्री रक्षा, दशम अध्याय में जाति भेद, एकोदश अध्याय में धर्म भिक्षुक तथा द्वादश अध्याय में कर्म फल निर्णय आदि विषयों पर विचार हैं। इस प्रकार मनुस्मृति में कुल बारह अध्याय हैं। मनुस्मृति का उद्देश्य एक विविध क्रियाशील बहुमुखी जीवन के लिए एक विधान करना था जिससे अनुशासन रखते हुए सुविधापूर्वक प्रजावृद्धि (संतान वृद्धि) हो तथा व्यक्ति सनातन धर्म का पालन करते हुए मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर हो। कुछ विद्वानों के अनुसार प्रारंभ में मनुस्मृति में एक लाख श्लोक थे पर वर्तमान में लगभग 2500 ही प्राप्त होते हैं। (शर्मा और शर्मा, 1997: 20–21)

मनु

मनु 'मनन' शब्द से बना है तथा मनु से मानव व मनुष्य शब्द की उत्पत्ति हुई है। मीमांसा दर्शन के तंत्र वार्तिका के अनुसार मनु किसी एक व्यक्ति की संज्ञा नहीं है बल्कि यह ब्रह्मा के महायुगपर्यंत प्रजापालन करने वाले अधिकारी की पदवी है। (द्विवेदी, 1917: 125) ब्रह्मा जी ने इस सृष्टि की रचना की और पृथ्वी के प्रथम पुरुष स्वयंभू मनु को उत्पन्न किया। स्वयंभू मनु के बाद छः मनु और हुए हैं जिन्होंने अपने अपने काल में प्रजा का पालन किया है। उनके नाम हैं – स्वारोचिष, उत्तम,

* राजनीति विज्ञान विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश

** शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश

तामस, रैवत, चाछष और वैवस्वत (वर्तमान)। (द्विवेदी, 1917, 13) भविष्य में जो मनु आयेंगे वो निम्न हैं– सावर्णी, दक्षसावर्णी, ब्रह्मसावर्णी, रूद्रसावर्णी, देवसावर्णी, इंद्रसावर्णी, रौच्य और भौत्य। प्रत्येक मनु के बाद मन्वंतर हुआ, जलप्लावन आया, नवसृष्टि हुई और नई सभ्यता उत्पन्न हुई। हिन्दू धर्म ग्रंथों में मनु को मानव जाति का आदि पुरुष, मानव सृष्टि का प्रवर्तक और समस्त मानव जाति का पिता या जनक बताया गया है और मानव जाति को मनु की संतान कहा गया है। (शर्मा और शर्मा, 1997, 18–21)

जगत की सृष्टि व काल गणना

मनुस्मृति के प्रथम अध्याय में स्पष्ट किया गया है कि ये संसार या सृष्टि ईश्वरीय इच्छा का परिणाम है। यह संसार अपनी उत्पत्ति के पूर्व अन्धकारमय था। स्वयंभू ईश्वर या ब्रह्म ने अपनी शक्ति को प्रकट किया और सम्पूर्ण विश्व के पितामह ब्रह्मा को उत्पन्न किया और फिर ब्रह्मा के माध्यम से सम्पूर्ण संसार की सृष्टि की। उन्होंने स्वर्ग लोक, भूलोक, पांच महाभूतों (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी), देवताओं, स्त्री, पुरुष व अन्य जीवों आदि की रचना की। मनु के अनुसार जब परमात्मा (ब्रह्मा) जागते हैं तब वे सृष्टि की रचना करते हैं और जब वे सोते हैं तब प्रलय होती है। (द्विवेदी, 1917ः 2–11) मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं का एक अहोरात्र (दिन रात) होता है और मनुष्यों के 360 वर्षों का एक देव वर्ष होता है तथा 12000 देववर्षों का एक देव युग होता है। इस प्रकार 4800 देववर्षों अर्थात 1728000 मानव वर्ष का सतयुग, 1296000 मानव वर्ष का त्रेतायुग, 864000 मानव वर्ष का द्वापरयुग और 432000 मानव वर्ष का कलियुग होता है। ब्रह्मा का एक दिन (रात नहीं) अर्थात एक कल्प 1000 चतुर्युग अर्थात मानव के 4 अरब 32 करोड़ (4320000000) वर्ष के बराबर है। (द्विवेदी, 1917, 13–15) एक कल्प 14 मन्वन्तर और उनके मनु के बराबर है तथा 71 चतुर्युगों का एक मन्वन्तर होता है। मन्वन्तर असंख्य हैं। सृष्टि और संहार भी असंख्य हैं। मन्वन्तर का अर्थ है मनु की आयु। प्रत्येक मन्वन्तर एक विशेष मनु द्वारा सृजित होता है। उक्त मनु की मृत्यु के बाद ब्रह्मा एक नए मनु की सृष्टि करते हैं। वर्तमान में श्वेतवाराह कल्प, सप्तम मन्वन्तर, वैवस्वत मनु व कलियुग है। कृतयुग (सतयुग) में धर्म पूरा सत्यमय होता है क्योंकि उस समय अधर्म से मनुष्यों का कोई कार्य नहीं बनता। सब मनुष्य रोग रहित होते हैं। सारे मनोरथ पूरे होते हैं और आयु 400 वर्ष होती है। दूसरे युगों में ये सब घटता जाता है। मनुष्यों को आयु, कर्मों का फल और देह का प्रभाव सब युगानुसार फल देते हैं। (द्विवेदी, 1917ः 17) मनुष्य अपने पूर्व कर्मों को प्राप्त होते है। (द्विवेदी, 1917ः 8) सतयुग में तप, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में दान देना मुख्य धर्म है। सतयुग में श्रीनरसिंह अवतार, त्रेतायुग में श्रीराम अवतार, द्वापरयुग में श्रीकृष्ण अवतार हुए हैं और कलियुग के अन्त में श्रीकल्कि अवतार होना है। मनु द्वारा उक्त विवरण देने का कारण ये था कि मनु मानव जीवन व ब्रह्माण्डीय प्रक्रिया को एक दृष्टि से देखते थे क्योंकि मानव या व्यक्ति अपने सनातन कर्तव्यों व नियमों के पालन द्वारा ब्रह्माण्डीय प्रक्रिया का संरक्षण करता है व मोक्ष प्राप्त करता है। (मेहता, 2016ः 28–32)

राज्य व्यवस्था

राज्य का साप्तांग स्वरुप – मनु ने राज्य के सात अंग या प्रकृतियाँ बताई हैं–1) स्वामी या राजा, 2) मंत्री, 3) पुर या दुर्ग, 4) राष्ट्र, 5) कोष, 6) दण्ड, 7) मित्र। इन सातों अंगों में सामंजस्य व सहयोग आवश्यक है। (मेहता, 2013–2014ः 32) मनु के अनुसार – प्रत्येक प्रकृति को उसके पश्चात दी गयी प्रकृति की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण स्वीकार किया जाना चाहिए। इस प्रकार सबसे महत्वपूर्ण अंग राजा है जिसे मनु स्वामी कहते हैं। महत्व के क्रम में दूसरा स्थान मंत्री का है। अर्थात राजा को मंत्री की सहायता से धर्म की स्थापना करनी चाहिए और इसमें अन्य प्रकृतियों का उपयोग करना चाहिए। परन्तु मनु ये भी कहते हैं कि किसी कार्य विशेष के लिए जिस प्रकृति की आवश्यकता है वही प्रकृति उस समय सबसे श्रेष्ठ है अर्थात अलग अलग समय में अलग अलग अंग महत्वपूर्ण होंगे।

राज्य और धर्म – मनु ने धर्म का अर्थ उन सभी गुणों, तत्वों, नियमों और व्यवस्थाओं के लिए किया है जिन्हें मानव मात्र के द्वारा धारण किया जाना चाहिए। धर्म से मनु का आशय यह है कि सभी व्यक्ति अपने निर्धारित कर्तव्यों का पालन करते हुए परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर हों। सभी व्यक्तियों द्वारा स्वधर्म का पालन किये जाने पर ही समाज व राज्य की सुव्यवस्था संभव है। मनु के अनुसार राज्य और धर्म परस्पर निर्भर हैं। राज्य का अस्तित्व धर्म प्रवर्तन के लिए है। धर्म को सुरक्षित रखने के लिए राज्य व दण्ड आवश्यक है क्योंकि समाज को धर्म के अनुशासन में लाने के लिए दण्ड की आवश्यकता होती है और ये कार्य राज्य या राजा करता है। मनु कहते हैं– 'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः' अर्थात धर्म का लोप कर देने से वह उस पुरुष को नष्ट कर देता है और धर्म की रक्षा करने से वह भी रक्षा करता है। (द्विवेदी, 1917ः 248)

वर्ण व्यवस्था का नियमन व निर्वाह – मनु वर्ण व्यवस्था को समाज के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं। वे राजा से अपेक्षा करते हैं की वो प्रत्येक वर्ण के सदस्य द्वारा उसके निर्धारित कर्तव्यों के पालन को सुनिश्चित कराये जिससे व्यवस्था सुचारू रूप से

चल सके। उनके अनुसार परमात्मा ने लोक की वृद्धि के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र ये चार वर्ण पैदा किये हैं। इनमें विराट रूप परमात्मा के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, उदर से वैश्य और पैर से शूद्र उत्पन्न हुए। डॉक्टर हिम्मत सिंह सिन्हा के अनुसार मनु स्मृति में वर्ण व्यवस्था जन्म आधारित न होकर कर्म आधारित है। विराट पुरुष अर्थात समाज के मुख से ब्राह्मण निकले का अर्थ है कि जो मुख से ज्ञान देगा वो ब्राह्मण है, जो अपने बाहुबल से दूसरों की रक्षा करे वो क्षत्रिय होगा, जो समाज का भरण पोषण करेगा वो वैश्य होगा, जो अपने पैरों के बल पर पूरे समाज को संभालेगा वो शूद्र होगा क्योंकि पैर ही पूरे शरीर को उठा कर रखते है। मनु ने इन्हें समाज के चार अंग माना है। मनु के अनुसार परमात्मा ने संसार की रक्षा के लिए चारों वर्णों के काम, अलग अलग नियत किये। ब्राह्मण का काम पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, दान देना, दान लेना है। क्षत्रिय का काम प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना और इन्द्रियों के विषयों में ना फँसना है। वैश्य का काम पशु पालन, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, व्यापार करना, ब्याज लेना, खेती करना है। शूद्रों का काम सेवा करना है। (द्विवेदी, 1917ः 18) इस संसार के दो भाग करके उन्होंने पुरुष और स्त्री को बनाया। (द्विवेदी, 1917ः 8) नियम निष्ठ ब्राह्मण जो इस शास्त्र (मनु स्मृति) का अध्ययन करता है वह मन, वाणी, देह के पापों से लिप्त नहीं होता। धर्म शास्त्र विशारद अपने वंश के सात पिता, पितामह आदि को पवित्र कर देता है। (द्विवेदी, 1917ः 20) मनु ने मनुष्यों में ब्राह्मण को श्रेष्ठ माना है क्योंकि वह ब्रह्म ज्ञानी है। (शर्मा और शर्मा, 1997ः 29) परन्तु अपने आचार से हीन ब्राह्मण वेदफल को नहीं पाता और जो आचारयुक्त है वह फलभागी होता है। (द्विवेदी, 1917ः 21) मनु ने कहा है कि ब्राह्मण को दान देना श्रेष्ठ है परन्तु उन्होंने कुपात्र ब्राह्मण को दान देने का विरोध किया है। उन्होंने जन्म से अधिक कर्म व ज्ञान पर बल दिया है। ब्राह्मण का कार्य समाज का निर्देशन करना है चाहे वो अध्यापक हो या पुजारी हो या राजा का सलाहकार हो। ब्राह्मण को आत्मानुशासन, तप, विद्या, क्षमा, दैन्य (नम्रता), शांति व ज्ञान अर्जित करना चाहिए। उसे सात्विक भोजन करना चाहिए व सात्विक दिनचर्या होनी चाहिए। अध्यापन करने वाले ब्राह्मण को ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में पारंगत होना चाहिए। उसे दिए उपदेश का स्वयं पालन करना चाहिए। उसे मन, कर्म, वचन पर नियंत्रण होना चाहिए। पुजारी व उपदेशक को पूजा, पवित्र ग्रंथों, मन्त्रों का सही प्रयोग आना चाहिए। राज काज में सहायता करने वाले को नियमों और कानूनों का व्यापक ज्ञान होना चाहिए। उसे प्रशंसा व सम्मान से विष के समान दूर भागना चाहिए। मनु के अनुसार "ब्राह्मणों की श्रेष्टता विद्या से, क्षत्रिय की बल से, वैश्य की धन से, और शूद्रों की जन्म से होती है।" अर्थात जो व्यक्ति स्वयं को जन्म के आधार पर श्रेष्ठ मानता है वह शुद्र है, ब्राह्मण तो विद्या के आधार पर श्रेष्ठ माना जायेगा। (शर्मा और शर्मा, 1997ः 31)

राजा व राज्य की दैवीय उत्पत्ति व अंश – मनु के अनुसार जब इस जगत में राजा नहीं था और प्रजा भय से व्याकुल होने लगी तब परमात्मा ने जगत की रक्षा के लिए राजा को उत्पन्न किया। इंद्र, चन्द्र, अग्नि, सूर्य, वायु, कुबेर, वरुण और यम इन आठ लोकपालों के सनातन अंश को लेकर परमात्मा ने राजा बनाया इसलिए वो अपने प्रभाव में इनके समान है। इंद्र राजा के पद पर है। राजा में लोकपालों का निवास होता है। (द्विवेदी, 1917ः 176–177) अर्थात राजा में इनके गुण होने चाहिए।" राजा इंद्र अथवा विद्युत् के समान एश्वर्यकर्ताय, पवन के समान सबके प्राणवत, प्रिय और ह्रदय की बात जानने वाला, यम के समान पक्षपातरहित, सूर्य के समान न्याय, धर्म तथा विद्या के प्रकाश वाला, अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करने वाला, वरुण के समान दुष्टों को बांधने वाला, चन्द्र के समान श्रेष्ठ पुरुषों को आनंद देने वाला तथा कुबेर के समान कोषों को भरने वाला होता है।" (जैन, 2012ः 22) मनु पाश्चात्य दैवीय विचार की तरह राजा को निरंकुश नहीं बनाता है। मनु का राजा धर्म और नैतिकता के अधीन है।

लोक कल्याणकारी राज्य, राजधर्म व प्रजा पालक राजा – मनुस्मृति के सातवें अध्याय में मनु इस पर विस्तार से प्रकाश डालते हैं। राज धर्म अर्थात जैसा राजा का आचरण होना चाहिए। मनु कहते हैं कि जो पदार्थ नहीं मिला राजा उसे लेने की इच्छा करे, प्राप्त वस्तु की रक्षा करे, रक्षित की उन्नति करे, और बढ़ी वस्तु सुपात्र को दे। राजा अधिक दक्षिणा वाले यज्ञ करे, दान दक्षिणा दे और गुरुकुल से विद्या पढ़कर लौटे ब्राह्मणों का पूजन करे। इससे राजा को अक्षय ब्रह्म प्राप्ति होती है और इस निधि को चोर नहीं चुरा सकते, शत्रु नहीं ले सकते और ये खो नहीं सकती। इसलिए राजा ब्राह्मणों में उस अक्षय निधि को स्थापित करे। (द्विवेदी, 1917ः 221) राजा अपराधियों को दण्ड दे और शत्रु के छिद्रों (कमियों) को देखे। (द्विवेदी, 1917ः 224) राजा को प्रजा के सुख दुःख की जानकारी रखनी चाहिए और प्रजा के लिए चारों पुरुषार्थों – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि में सहायक होना चाहिए। अर्थात मनु ने राजा को प्रजा के भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक कल्याण में सहायक होने का आदेश दिया है। मनु ने चेतावनी दी कि "यदि राज्य में वेद पाठी ब्राह्मण भूख से दुःख पाता है तो राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।" राजा को असहाय व्यक्तियों, संतानहीन स्त्रियों, विधवाओं, रोगग्रस्त स्त्रियों व अवयस्क की संपत्ति की रक्षा करनी चाहिए। राजा को प्रजा के साथ पिता के समान व्यवहार करना चाहिए।

दण्ड धारक राजा – मनु के अनुसार राजधर्म के पालन के लिए दण्ड का प्रयोग आवश्यक है। राजा दण्ड का स्वामी नहीं वरन अभिकर्ता मात्र है। राजा दण्ड का प्रयोग मनमाने रूप में नहीं कर सकता बल्कि उसे दण्ड का प्रयोग विधिपूर्वक और

नैतिक प्रयोजन के लिए करना चाहिए। मनु के शब्दों में "प्रजापति ने राजा के लिए ब्रह्मतेजमय, धर्म रूप और अपने पुत्र रूप दण्ड को पहले ही उत्पन्न किया है। दण्ड के भय से सब प्राणी अपने भोग को प्राप्त होते है और धर्म से विचलित नहीं होते।" (द्विवेदी, 1917ः 207– 209) राजा को देश, काल, शक्ति और विद्या का विचार करके यथा योग्य अपराधियों को दण्ड देना चाहिए। यह दण्ड ही राज्य को नियम में रखने वाला है। दण्ड सम्पूर्ण प्रजा पर शासन करता है और दण्ड ही रक्षा करता है। दण्ड का विचारपूर्वक प्रयोग प्रजा को प्रसन्न करता है और अविचारपूर्वक प्रयोग नाशकारक होता है। मनु ने कहा है कि यदि राजा अपराधियों को दण्ड न दे तो बलवान लोग निर्बलों को मछली की भांति भून डालेंगे। मनु उदाहरण देते हैं कि राजा दण्ड न दे तो कुत्ता यज्ञ बलि चाट जायेगा। सब लोग दण्ड से सन्मार्ग में रहते हैं और जगत के वैभव भोग सकते हैं। दण्ड के बिना सब लोग उपद्रव करेंगे। जिस देश में पापनाशक दण्ड विचरता है और राजा सब तरफ न्याय दृष्टि से देखता है, वहां प्रजा को दुःख नहीं होता। जो राजा दण्ड का उचित प्रयोग करता है वह अर्थ, धर्म और काम से वृद्धि पाता है, वास्तव में दण्ड में बड़ा तेज है, उसका धारण साधारण राजा नहीं कर सकते हैं। मंत्री या सेना की सहायता से रहित, लोभी, मूर्ख, निर्बुद्ध, विषयासक्त राजा से दण्ड या राजधर्म नहीं चल सकता। न्यायपूर्वक मिले धन से शुद्ध, सत्यप्रतिज्ञ, शास्त्रानुसार बर्ताव करने वाला बुद्धिमान राजा अपने मंत्री की सहायता से दण्ड विधान कर सकता है। राजा को न्यायकारी और शत्रुओं को दण्ड देने वाला, हितैषियों से कुटिलता रहित और ब्राह्मणों पर क्षमावान होना चाहिए। (द्विवेदी, 1917ः 210–212) राजा दण्ड से ही सभी प्राणियों को स्वाधीन रखता है। दण्ड के कारण छल से कोई व्यवहार नहीं करता। राजा दण्ड के प्रयोग से अपनी रक्षा करता है। सदा दण्ड देने वाले राजा से सारा जगत डरता है। (द्विवेदी, 1917ः 224) राज्य रक्षा से राजा की सुख वृद्धि होती है। (द्विवेदी, 1917ः 226) मनु ने दण्ड विधान में ब्राह्मणों को विशिष्टता प्रदान की है। ब्राह्मण को प्राण दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए पर ब्राह्मण से कटु वचन बोलने पर, दक्षिणा ना देने पर, ब्राह्मण स्त्री से दुराचार करने वाले पर दण्ड का प्रावधान है। (शर्मा और शर्मा, 1997ः 32)

दण्ड के प्रकार – मनु ने दण्ड के चार प्रकार बताये हैं। प्रथम दण्ड–वाग दण्ड अर्थात समझाना, फिर धिक्कार या लानत, फिर जुर्माना और फिर शारीरिक दण्ड। (द्विवेदी, 1917ः 268) इन्हें एक के बाद एक देना चाहिए परन्तु आवश्यकता होने पर एक साथ भी दे सकते हैं। मनु ने दण्ड के दस स्थान बताये हैं– उपस्थ, पेट, जीभ, हाथ, पैर, नेत्र, नाक, कान, धन और देह। मनु के अनुसार दण्ड पीड़ानुसार देना चाहिए। यदि अपराध से पीड़ित को अधिक पीड़ा हुई तो अधिक दण्ड और कम पीड़ा हुई तो कम दण्ड दिया जाना चाहिए। (शर्मा और शर्मा, 1997ः 39) आर्थिक दण्ड उच्च वर्ण वालों पर अधिक व निम्न वर्ण वालों पर कम लगाना चाहिए। चोरी करने पर शूद्र को चोरी का आठ गुना, वैश्य को सोलह गुना, क्षत्रिय को बत्तीस गुना व ब्राह्मण को चौसठ गुना, सौ गुना या एक सौ अठाइस गुना दण्ड दिया जाना चाहिए। यौन अपराधों पर भी दण्ड की व्यवस्था थी। पराई स्त्री से संयोग करने वाले को तथा व्याभिचारी स्त्री व पुरुष दोनों को कठोर दण्ड का विधान मनु करते हैं। अरक्षित स्त्री से बलात्कार करने पर मनु प्राणदण्ड का प्रावधान करते हैं। (शर्मा और शर्मा, 1997ः 41)

ज्ञानी और संयमी राजा – राजा को वेदज्ञों से वेद, धर्म नीति, दण्ड नीति, ब्रह्मनीति, अर्थशास्त्र व अन्य व्यवहार विद्या को पढ़ना चाहिए। राजा को इन्द्रियों को वश में करने की कोशिश करते रहना चाहिए क्योंकि जितेन्द्रिय राजा ही प्रजा को वश में रख सकता है। काम और क्रोध से पैदा हुए आठ व्यसनों का कोई अन्त नहीं है, इनसे राजा को यत्न पूर्वक बचना चाहिए। काम से पैदा व्यसनों जैसे मद्यपान, शिकार, जुआ, नाच, स्त्री संग आदि से राजा अर्थ और धर्म से हीन हो जाता है और क्रोध से पैदा हुए व्यसनों जैसे मार पीट, कठोर वचन, दूसरे की धन हानि आदि में लग जाने से अपने शरीर से ही नष्ट हो जाता है। इन दोनों प्रकार के दोषों का कारण लोभ है। अतः राजा को ज्ञानी व संयमी होना चाहिए। (द्विवेदी, 1917ः 214–215)

प्रजा रक्षक, नीतिवान व युग निर्माता राजा – प्रजा की रक्षा व कल्याण करना राजा का कर्तव्य है। राजा को अपने कर्तव्यों जैसे प्रजा रक्षा को प्रमाद (आलस) रहित और कार्यपरायण तरीके से पूरा करना चाहिए। राजा को प्रजा में नीति से बर्ताव करना चाहिए। (द्विवेदी, 1917ः 220) राजा को मंत्रियों की सहायता से अपराधी तत्वों से और बाहरी आक्रमण से प्रजा की रक्षा करनी चाहिए। मनु के अनुसार, "सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग सब राजा के कार्यों पर ही आधारित हैं क्योंकि राजा ही भले बुरे समय का कारण है– युग स्वरुप है। जब राजा आलस्य, निद्रा में समय बितावे तो कलियुग, जब सावधानी से राज्य करे तो द्वापर, जब अपने कार्यों में लगा रहे तब त्रेता और जब शास्त्रानुसार कर्मों का सम्पादन करे तब सतयुग होता है।" (द्विवेदी, 1917ः 368)

विनीत व धर्म आधीन राजा – मनु के अनुसार राजा को विनीत रहना चाहिए क्योंकि बहुत से राजा अविनय से धन संपत्ति सहित नष्ट हो गए और बहुत से जंगल में रहकर भी अपने विनय से राज्य पा गए। मनु का राजा निरंकुश नहीं है। वह धर्म या विधि के आधीन है। राजा के अपराध को ना तो क्षमा किया जा सकता है ना अनदेखा किया जा सकता है। मनु के अनुसार जहाँ एक साधारण व्यक्ति को एक पण का दण्ड भरना होगा वही राजा को एक हजार का दण्ड भरना होगा। (पाधी, 2014ः 25)

परिवर्तनशील राजा — मनु के अनुसार राजा को कछवे के समान राजकीय अंगों को छिपा कर रखना चाहिए। उसे बगुले की भांति एकचित्त होकर राजकार्यों का विचार करना चाहिए। उसे सिंह के समान मौका पाकर शत्रुओं से पराक्रम रखना चाहिए, उसे भेडिये के समान मौका पाकर शत्रुक्षय करना चाहिए और खरगोश के समान आपत्तियों से भाग जाना चाहिए। (द्विवेदी, 1917ः 225) राजा को कभी सीधा और कभी तीखा स्वभाव रखना चाहिए। मनु कहते हैं कि "राजा अपने शत्रुओं को साम, दाम, भेद व दण्ड द्वारा वश में करे।" (द्विवेदी, 1917ः 225)

शक्तिशाली राजा — मनु के अनुसार राजा अपने तेज से सब प्राणियों को दबा देता है। राजा को जो देखता है उसके आंख और मन पर सूर्य का सा प्रभाव पड़ता है। राजा यदि बालक हो तो भी उसका अपमान नहीं करना चाहिए क्योंकि वह मनुष्य रूप में बड़ा देवता है। वह धन, कुल और पशु सभी को भस्म कर सकता है। राजा देश, काल, कार्य और शक्ति को विचार कर अपने राजधर्म की सिद्धि के लिए कभी क्षमा, कभी कोप, कभी मित्रता धारण करता है। उसकी प्रसन्नता में लक्ष्मी, पराजय में जय और क्रोध में मृत्यु का वास है। उसके साथ अज्ञान से जो द्वेष करता है वह नष्ट हो जाता है, क्योंकि राजा शीध्र ही उसके नाश का विचार करता है। इसलिए राजा जिस धर्म कानून की स्थापना करे उसे कभी नहीं तोड़ना चाहिए।

परिश्रमी राजा — राजा को प्रातः उठकर एकाग्रचित्त होकर अग्निहोत्र करके, ब्राह्मण सत्कार करके, राज सभा में प्रवेश कर वहां उपस्थित दर्शकों को प्रीतिपूर्वक विदा करके मंत्रियों के साथ राज काज का विचार करना चाहिए। राजा को गुप्त मंत्रणा एकांत स्थल पर दोपहर या आधी रात को करनी चाहिए। राजा को धर्म, अर्थ, काम का विचार करना चाहिए व राजा को अन्य राजाओं के वृतान्तों को भी यत्न से जानना चाहिए। (द्विवेदी, 1917ः 233)

राजा पर नियंत्रण — मनु का राजा निरंकुश नहीं है। मनु ने राजा को धर्म के अधीन रखा है। राजा को सदैव ही प्रजा का पालन व रक्षण करना है। मनु ने राजा के ऊपर संस्थागत नियंत्रण भी लगाये हैं। राजा को मंत्रियों से परामर्श करना चाहिए और अनावश्यक करारोपण प्रजा पर नहीं करना चाहिए। मनु ने प्रशिक्षण के द्वारा भी उसे मर्यादित किया है। उसकी दिनचर्या कठोर है। उसका जीवन भोग के लिये नहीं बल्कि सेवा के लिए है। मनु ने राजा के लिए दण्ड का विधान भी किया है। उसे साधारण लोगों से अधिक दण्ड दिया जाये क्योंकि वह अधिक ज्ञानी है। मनु के अनुसार "यदि राजा कामी, छुद्रवृत्ति हो तो उस दण्ड से स्वयं नष्ट हो जाता है। बुरे राजा को यह कुटुंब सहित नष्ट कर देता है।" मनु स्पष्ट करते हैं कि "जो राजा अज्ञानवश व बिना विचार किये अपने राज्य की प्रजा को दुःख देता है वह शीघ्र ही राज्य, जीवन और बांधवों से भ्रष्ट हो जाता है। जैसे शरीर के शोषण से प्राणियों के प्राण घटते हैं वैसे राष्ट्र को दुःख देने से राजाओं के भी प्राण घटते हैं।" (द्विवेदी, 1917ः 226) सालेटोर के शब्दों में— "मनु ने निःसंदेह यह कहा है कि जनता राजा को गद्दी से उतार सकती है और उसे मार भी सकती है यदि वह अपनी मूर्खता से जनता को सताता है।" (जैन, 2012, 26)

राजधानी व दुर्ग — मनु दुर्ग को अत्यंत मत्वपूर्ण मानते हैं। वे कहते हैं कि "राजा को ऐसे स्थान पर रहना चाहिए जो स्वाधीन हो, जहाँ जंगल हों, खेती अच्छी हो, शिष्ट पुरुष बसते हों, रोग आदि उपद्रवों से रहित हो और देखने में सुन्दर हो। नगर निम्न किलों के आश्रय में बसाना चाहिए— धनुदुर्ग, महीदुर्ग, जलदुर्ग, वृक्षदुर्ग, सेनादुर्ग, गिरीदुर्ग। मनु के अनुसार गिरी दुर्ग श्रेष्ठ है क्योंकि इसमें राजा को शत्रु मार नहीं सकता। किले के भीतर रहनेवाला एक धनुर्धर सौ योधाओं से लड़ सकता है और सौ धनुर्धर दस हजार के साथ लड़ सकते हैं। दुर्ग को हथियार, धन, धान्य, वाहन, ब्राह्मण, शिल्प विशारद, यंत्र, फल, घास आदि से परिपूर्ण रखना चाहिए। राजा अपने लिए दुर्ग की बीच में एक महल— मकान बनाये जो सब ऋतुओं के फल पुष्प युक्त, सफेदी किया हुआ, जल और वृक्षों के सहित हो।" (द्विवेदी, 1917ः 218—219)

राजा मंत्री व अधिकारी — मनु कहते हैं कि यदि राजा स्वयं राज्य के कार्यों को देखने में असमर्थ हो तो चतुर, धर्मात्मा, कुलीन प्रधान मंत्री नियुक्त करे। (द्विवेदी, 1917ः 230) राजा को सात या आठ मंत्री रखने चाहिए जो राज सेवक, नीति विद्या में चतुर, शूरवीर, अच्छा निशाना लगाने वाले, कुलीन, पवित्र, बुद्धिमान और असमय (बुरे समय में) परीक्षित हों। राजा को उनसे संधि, विग्रह, दण्ड, पुर, राष्ट्र, स्थान, द्रव्य मिलने के उपाय, धन रक्षा, देश रक्षा आदि विषयों पर भी परामर्श करना चाहिए और उनकी सम्मति लेकर काम करना चाहिए। राजा को आवश्यकता के अनुसार राज कर्मी नियुक्त करना चाहिए और खजाने के काम में शूर, चतुर, कुलीन को नियुक्त करना चाहिए। (द्विवेदी, 1917ः 216—217) राजा को वर्ष के अन्त में किसी विश्वासपात्र द्वारा राजकर का संग्रह करवाना चाहिए। उसे विभिन्न कार्यो के लिए जानकार अध्यक्ष नियुक्त करना चाहिए जो राजा के सभी कार्यकर्ताओं पर निगरानी रखे। (द्विवेदी, 1917ः 220) राजा को परंपरा से चले आ रहे सेवकों को नियुक्त करना चाहिए। (शर्मा और शर्मा, 1997ः 35)

ग्राम प्रशासन — मनु के अनुसार राजा को दो, तीन, पांच व सौ ग्रामों के बीच में रक्षा करने वाले पुरुषों का एक महकमा कायम करना चाहिये। एक गाँव का, दस का, बीस का, सौ का और हजार गाँव का एक एक अधिपति नियत करना चाहिए। गाँव के अधिपति को गाँव के बखेड़ों (समस्याओं) को जानकर उसका फैसला करना चाहिए, या दस गाँव के अधिपति को

सूचित करना चाहिए या बीस गांवों के अधिपति को सूचना देनी चाहिए। गाँव में नियुक्त राज पुरुष को अन्न व ईंधन इत्यादि एकत्रित करके राजा तक पहुंचाना चाहिए। गाँव के अधिपति को कुछ भूमि अपने निर्वाह के लिए काम में लानी चाहिए। एक सर्वप्रिय मंत्री को गांवों के कार्यों को देखना चाहिए। प्रत्येक नगर में एक तेजस्वी अध्यक्ष हो जो सदा ग्रामाधिपतियों के कार्यों को जांचे और दूतों से उनके आचरण को भी जाने क्योंकि राज पुरुष प्रायः दूसरों के धन को हरने वाले होते हैं। राजा को उनसे प्रजा की रक्षा करनी चाहिए और रिश्वत लेने वाले पापी का सब कुछ लेकर उसे देश निकाला देना चाहिए। राजा को राज कार्यों में लगे स्त्री पुरुषों का कर्म के अनुसार वेतन निर्धारित करना चाहिए। निकृष्ट को कम और उत्तम कार्य करने वाले को अधिक वेतन देना चाहिए।

कर प्राप्ति के साधन – मनु द्वारा कर प्राप्ति के निम्न साधन बताये गए हैं– 1) बलि या कृषि कर, 2) शुल्क या व्यापार कर, 3) दण्ड द्वारा कर संग्रह, 4) श्रमजीवी कर– महीने में एक दिन राज्य का कार्य, 5) अन्य कर जैसे तट कर, पशु कर, आय कर आदि। भूमि का स्वामी और रक्षक होने से राजा गढ़े धन और धातु की खानों के आधे भाग का अधिकारी है। (द्विवेदी, 1917ः 253) राजा को निर्धन ब्राह्मणों से कर नहीं लेना चाहिए। (शर्मा और शर्मा, 1997ः 39)

अधिक करारोपण निषेध व करारोपण का उद्देश्य राज्य हित – राजा को व्यापारियों और उद्यमियों पर कर लगाने के पूर्व उनके और राज्य के हित पर विचार करना चाहिए। उसे जोंक, भंवरे व बछड़े की तरह धीरे धीरे सालाना कर लेना चाहिए। उसे पशु और सोने का पचासवां भाग, अन्न का छटा, आठवां या बारहवां भाग, वृक्ष, फल, घी पात्रों आदि का छटा भाग लेना चाहिए। राजा को श्रोत्रिय (वेद ज्ञाता) ब्राह्मण से कभी कर नहीं लेना चाहिए। राजा को लोहार, बढ़ई आदि से महीने में एक दिन बेगार काम लेना चाहिए। राजा को स्नेह से कर लेना चाहिए और लोभ में प्रजा को अधिक कर से सताना नहीं चाहिए। राजा ऐसा काम न करे जिससे राज्य और प्रजा को कष्ट उठाना पड़े। यदि राजा स्वयं उपरोक्त कार्यों को देखने में असमर्थ हो तो चतुर, धर्मात्मा व कुलीन प्रधानमंत्री को .कार्य सौपे। (द्विवेदी, 1917ः 223–230) मनु के अनुसार अपाहिज व वृद्ध लोगों से कर नहीं लिया जाना चाहिए। (शर्मा और शर्मा, 1997ः 42)

अर्थव्यवस्था का संचालन और नियंत्रण – मनु ने अर्थ के महत्त्व को स्वीकार किया और राजा को उत्तरदायित्व दिया कि वह प्रजा की भौतिक और आर्थिक उन्नति के लिए प्रयास करे। राजा को कृषि उत्पादकों और व्यापारियों के हितों की रक्षा करनी चाहिए लेकिन ये भी सुनिश्चित करना चाहिए कि व्यापारी प्रजा को ना लूटें। मनु ने माना कि गृहस्थ को अर्थ कमाना चाहिए क्योंकि वही समाज का भरण पोषण करता है और भरण पोषण करने के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है।

विधि के चार स्रोत – मनु ने विधि के चार स्रोत बताये हैं– 1) वेदोक्त धर्म, 2) स्मार्त धर्म, 3) ऋषि परम्परा, 4) आत्म तुष्टि या अंतरात्मा। केवल मोटवानी के अनुसार आधुनिक काल में इनको 1) संवैधानिक कानून, 2) विधायिका निर्मित कानून, 3) सदाचार की परम्पराएँ और 4) नैतिकता के नियम कहा गया है। (मेहता, 2013–14ः 37)।

विधायिका – मनु के अनुसार इस परिषद में दस सदस्य हो सकते हैं। ये तीन वेदों के ज्ञाता होते हैं अर्थात ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद। इनका योग्य होना अति आवश्यक है। यदि दस योग्य व्यक्ति ना मिले तो तीन या एक योग्य व्यक्ति असंख्य अयोग्य व्यक्तियों से अच्छा है। ये कार्य विधियों की व्यवस्था और व्याख्या करते थे। इनका प्रमुख कार्य विधि निर्माण नहीं बल्कि विधि व्याख्या द्वारा राजा की सहायता करना था। (मेहता, 2013–14ः 37)

न्याय व्यवस्था

न्यायालय संगठन – मनु मुख्यतः एक केन्द्रीय न्यायालय का उल्लेख करते हैं जहाँ राजा स्वयं विद्वान ब्राह्मणों और राजनीति में चतुर मंत्रियों के साथ वादी और प्रतिवादियों को न्याय प्रदान करता है। मनु के अनुसार यदि राजा स्वयं ये कार्य ना देख पाए तो विद्वान् ब्राह्मण को सौंप दे। वह ब्राह्मण तीन सभासदों के साथ राजा के खास कामों को देखे। मनु के अनुसार जिस राज्य में वेद विशारद तीन ब्राह्मण राजसभा में निर्णयार्थ बैठते हैं और राजा का अधिकार पाया हुआ एक विद्वान ब्राह्मण रहता है वह ब्रह्मा की सभा मानी जाती है। जिस सभा में अधर्म से धर्म की और असत्य से सत्य की हत्या होती है उस सभा के सभासद नष्ट हो जाते हैं। अधर्म होने पर उसका एक चौथाई अधर्म अन्याय करने वाले को, एक चौथाई झूठे गवाह को, एक चौथाई सभासद और एक चौथाई राजा को लगता है। जिस सभा में अन्यायी पुरुष की निंदा की जाती है वहां राजा और सभासद दोष से छूट जाते हैं।

विवादों के प्रकार – मनु ने अठारह प्रकार के विवाद या झगड़ों का उल्लेख किया है– 1) ऋण लेकर ना देना, 2) धरोहर सम्बन्धी, 3) दूसरे की वस्तु बेचना, 4) साझे का व्यापार, 5) दान दिया हुआ लौटा लेना, 6) नौकरी न देना, 7) प्रतिज्ञा भंग करना, 8) खरीद बेच का झगडा, 9) पशु स्वामी और चरवाहे का झगडा, 10) सरहद की लड़ाई, 11) बड़ी बात कहना, 12) मार पीट, 13) चोरी, 14) जोर जुल्म, 15) पर स्त्री को ले लेना, 16) स्त्री और पुरुष के धर्म की व्यवस्था, 17) जुआखोरी, 18) जानवरों की लड़ाई में हार जीत का दांव करना।

न्याय प्रक्रिया – मनु के अनुसार न्याय प्राक्रिया के चार व्यावहारिक पक्ष हैं– 1) पूर्व पक्ष या वादी, 2) प्रतिपक्ष या प्रतिवादी, 3)

क्रिया या कार्यवाही और 4) निर्णय। (महता, 2013–14: 39) निर्णय करते हुए राजा को मनुष्यों के ऊपरी लक्षण जैसे स्वर, शरीर का वर्ण, देखने का तरीका, रोमांच, हाथ, पैर की चेष्टा आदि से अन्दर का हाल पहचानना चाहिए। निर्णय सनातन धर्म के अनुसार करना चाहिए। मनु कहते हैं– राजा सत्य का निर्णय करे, अन्याय से स्वयं डरे।

प्रमाण – दो प्रकार के प्रमाण– 1) मानुष और 2) दिव्य प्रमाण। मानुष प्रमाण तीन तरह के होते हैं– लिखित, भोग और साक्षी। लिखित प्रमाण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है परन्तु वह बलपूर्वक लिखवाया नहीं होना चाहिए। भोग का अर्थ है कब्जा या नियंत्रण। साक्षी वह होता है जिसने घटना को होते देखा या सुना हो। कुटुम्बी, पुत्रवान, उसी देश का वासी, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र गवाही दे सकते हैं। सब वर्णों में जो यथार्थ कहने वाले और धर्मज्ञ हों, लोभी ना हों उनको साक्षी करना चाहिए। रोगों से दुखी, नशाबाज, उन्मत्त, दुखी, थका, क्रोधी, काम पीड़ित और चोर को गवाह नहीं मानना चाहिए। (द्विवेदी, 1917: 256–257) झूठी गवाही देने वाले को धन दण्ड व देश निकाला देना चाहिए। (द्विवेदी, 1917: 267) मनु कहते हैं कि सभा में जाकर झूठ कहने वाला पातकी होता है इसलिए या तो सभा में नहीं जाना चाहिए, पर यदि गए तो सत्यवचन कहना चाहिए। दिव्य प्रमाण दो प्रकार के होते हैं। एक अग्नि दिव्य प्रमाण और दूसरा जल दिव्य प्रमाण। (मेहता, 2013–14: 39)

निर्बलों को न्याय – बालक, अपुत्रा, विधवा, पतिव्रता और रोगी स्त्री का धन राजा की रक्षा में रहे और यदि उसे भाई बन्धु ले लेना चाहे तो उन्हें राजा द्वारा दण्डित किया जाना चाहिए। (द्विवेदी, 1917: 246–251)

परराष्ट्र सम्बन्ध या विदेश नीति

मंडल सिद्धांत – मनु ने विजयगीशु राजा को केंद्र में मानकर चार प्रकार के राज्य या राजा और उनसे विजयगीशु राजा को कैसे व्यवहार करना चाहिए इसको बताया है। ये चार राजा हैं– शत्रु, मित्र, मध्यम और उदासीन। शत्रु राजा वह है जो विजयगीशु राजा पर आक्रमण करे या जिसपर विजयगीशु राजा आक्रमण करे। मित्र वह है जो विजयगीशु राजा को सहायता प्रदान करे। उदासीन वह है जो ना सहायता करे ना विरोध करे, और मध्यम वह है जो अवसर अनुसार सहायता या विरोध करे। विजयगीशु राजा को शत्रु की सीमा पर स्थित राजा को मित्र और मित्र राजा की सीमा पर स्थित राजा को उदासीन समझना चाहिए। विजयगीशु राजा को अपनी सीमा के पास रहनेवाले और शत्रु से मेल रखने वाले राजा को शत्रु समझना चाहिए। नीतिवेत्ता राजा को ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे उसके मित्र, उदासीन, मध्यम और शत्रु राजा बलवान ना हों। विजयी राजा पर पीछे से आक्रमण करने वाला शत्रु होता है और जो शत्रु को रोके उसे क्रंद (मित्र) कहते हैं। राजा को इन दोनों से सम्बन्ध नहीं बिगाड़ना चाहिए। राजा ने जिस भूमि को जीता है वहां की प्रजा का भूमिकर कम करके उन्हें अभय प्रदान करना चाहिए। उसने जिस राजा को जीता है उस राजा और मंत्री का अभिप्राय जानकार, अपनी शर्ते मनवाकर, उसी के वंश वाले को गद्दी देकर और उनके रिवाजों को स्वीकार करके मित्रता करनी चाहिए क्योंकि सुवर्ण और भूमि की तुलना में स्थिर मित्र अधिक उपयोगी होता है। मनु के अनुसार धर्मज्ञ, कृतज्ञ, प्रसन्नचित्त, प्रीति करने वाला, स्थिर कार्य का आरम्भ करने वाला, छोटा मित्र अच्छा होता है। बुद्धिमान, कुलीन, शूर, चतुर, दाता, कृतज्ञ और धैर्यवान शत्रु कठिन होता है। (द्विवेदी, 1917: 241– 243)

षड्गुण नीति – मनु के अनुसार राजा को अपने राज्य के लाभ के लिए अन्य राजाओं के प्रति समयानुसार निम्न छः नीतियों का प्रयोग करना चाहिए– संधि (मेल), विग्रह (लड़ाई), यान (चढ़ाई), आसन (किले में रहना), द्वैध (अपनी सेना के दो भाग करना) और संश्रय (अपने से बलवान का आश्रय)। संधि दो प्रकार की होती है– समानकर्ता और असमानकर्ता संधि। समानकर्ता संधि में राजा अपने मित्र राजा के साथ मिल कर वर्तमान या भविष्य में लाभ के लिए दूसरे पर चढ़ाई करने के लिए संधि करता है। असमानकर्ता संधि में राजा, एक राजा पर चढाई करने के लिए और उसका मित्र राजा दूसरे राजा पर चढ़ाई करने की संधि करते हैं। विग्रह भी दो प्रकार का होता है– स्वयंकृत विग्रह और मित्रस्य विग्रह। शत्रु को पराजित करने के लिए स्वयं लड़ाई करना स्वयंकृत विग्रह और अपने मित्र की रक्षा के लिए लड़ाई करना मित्रस्य विग्रह है। यान अर्थात आक्रमण या चढ़ाई दो प्रकार की होती है। प्रथम, जब राजा स्वयं किसी राजा पर चढ़ाई करता है और द्वितीय जब राजा मित्र राजा के साथ मिल कर किसी अन्य राज्य पर चढ़ाई करता है। (मेहता, 2013–14: 42) आसन भी दो प्रकार के होते हैं– प्रथम धन आदि से हीन या कम होने के कारण छुप कर बैठना और दूसरा सामर्थ्य होते हुए भी किसी मित्र के कहने पर छुप कर बैठना। सेना को दो जगह रखना द्वैध है। संश्रय भी दो प्रकार के होते हैं– प्रथम शत्रुओं से पीड़ित होने पर और दूसरा सत्पुरुषों को जानने के लिए अपने से बलवान राजा का आश्रय लेना।

धर्म युद्ध या युद्ध नीति – मनु के अनुसार राजा को साम, दाम और भेद से शत्रु को जीतना चाहिए। जब उक्त उपायों से कार्य सिद्ध ना हो तभी उसे युद्ध करना चाहिए। राजा को प्रयास करना चाहिए कि युद्ध का उपयोग ना करे क्योंकि इसमें जीत निश्चित नहीं होती। वर्तमान में कमजोर होने पर व भविष्य में उन्नति के आशा होने पर वर्तमान में संधि करनी चाहिए और स्वयं बलवान होने पर या शत्रु के कमजोर होने पर युद्ध करना चाहिए। युद्ध के पूर्व राजा को अपने नगर की रक्षा का प्रबंध करके, गुप्त दूतों को भेजकर, मार्ग को साफ कराकर, छ प्रकार की सेना (हाथी, घोडा, रथ, पैदल, खजाना और नौकर) को ठीक करके, सम्पूर्ण युद्ध सामग्री लेकर, धीरे से शत्रु के नगर पर आक्रमण करना चाहिए। राजा को दण्ड व्यूह, शकत व्यूह,

वराह व्यूह, मकर व्यूह, सुई व्यूह, गरुड़ व्यूह आदि में आक्रमण करना चाहिए। परन्तु राजा को उत्तम भूमि को भी अपने प्राणों की रक्षा के लिए बिना विचार किये छोड़ देना चाहिए। (द्विवेदी, 1917ः 241— 243) मनु कहते हैं कि यदि कोई अन्य राजा रण का निमंत्रण दे तो राजा को क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए पैर पीछे नहीं हटाना चाहिए। परन्तु राजा को धर्म युद्ध करना चाहिए इसलिए राजा युद्ध में छिपे अस्त्रों से, जहर बुझे और आग के जले अस्त्रों से शत्रु को ना मारे। राजा जमीन में खड़े हुए शत्रु को, नपुंसक को, हाथ जोड़ने वाले को, सोते हुए को, टूटे कवच वाले को, नंगे को, शस्त्र हीन को, युद्ध ना करने वाले को, संग्राम देखने वाले को और दूसरे शत्रु से लड़ते हुए को ना मारे। (द्विवेदी, 1917ः 222) मनु के अनुसार युद्ध में रथ, हाथी, घोडा, छत्र, धन, धान्य, पशु, आदि जो जीते गई वस्तुएं हैं उसमें सोना, चांदी आदि उत्तम पदार्थ राजा के हैं पर अन्य जीती हुई वस्तुएं राजा को सब योधाओं को बाँट देनी चाहिए। (द्विवेदी, 1917ः 223)

राजदूत व गुप्तचर व्यवस्था — मनु के अनुसार राजा को अन्य राजाओं के वृतान्तों को प्रयास करके जानना चाहिए। ये कार्य राजदूतों व गुप्तचरों के द्वारा करना चाहिए जिनकी नियुक्ति राज्य हित के संवर्धन के लिए की जाती है। राजदूत योग्य, ईमानदार, दक्ष, स्वामीभक्त और देशभक्त होना चाहिए। मनु के अनुसार राजा उसको दूत नियुक्त करे जो बहुश्रुत हो, हृदय के भाव और चेष्टाओं को जानने वाला हो, अन्तःकरण का शुद्ध, चतुर, शत्रु का भी प्रेमपात्र, आचार पवित्र, कार्य कुशल, सुंदर, निर्भय, वाचाल, देशकाल ज्ञाता, पूर्वापर (आगे पीछे) बातों का स्मरण रखने वाला और कुलीन हो। मनु मानते हैं कि दूत ही शत्रुओं को मिलाता है और मित्रों को अलग करता है। दूत को शत्रु के आकार, मनोभाव और चेष्टाओं से उस के छिपे अभिप्राय को जान कर और राजा को सूचित करना चाहिए और राजा को दूत द्वारा शत्रु की सब चालों को ठीक से जानकर वो सभी उपाय करने चाहिए जिससे शत्रु उसे कोई पीड़ा ना दे सके। (द्विवेदी, 1917ः 218)

आलोचनात्मक समीक्षा

राजा का दैवीय स्वरुप प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के अनुरूप नहीं — आलोचकों के अनुसार राजा का दैवीय स्वरुप प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के अनुरूप नहीं है। ये सत्य है कि मनु ने राजतंत्र की स्थापना की है परन्तु मनु का राजा निरंकुश नहीं है। उस पर धर्म, योग्यता, प्रशिक्षण आदि का नियंत्रण है। ये भी सत्य है कि आज तक कोई निष्कलंक राजनीतिक व्यवस्था प्राप्त नहीं हुई है। वर्तमान में लोकतंत्र को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है परन्तु लोकतंत्र भी निष्कलंक या पूर्णतः दोष रहित व्यवस्था नहीं है। लोकतंत्र में भी देश व लोक हित के स्थान पर दल हित या व्यक्ति हित प्रमुख हो सकता है। दूसरी ओर यदि राजा देश व प्रजा हित को सर्वोच्चता देने वाला है तो राजतंत्र, लोकतंत्र से बेहतर हो सकता है। मनु का राजा 'दार्शनिक राजा' या 'राज ऋषि' है। वो भोग विलास नहीं करता बल्कि प्रजा की सेवा करता है।

ब्राह्मणों को समाज व्यवस्था में अन्य वर्णों से उच्च स्थान — आलोचकों के अनुसार मनु ने ब्राह्मणों को समाज व्यवस्था में अन्य वर्णों से उच्च स्थान दिया गया है अतः मनु ब्राह्मणवादी है। ये सही है कि मनु ने ब्राह्मण वर्ण को समाज का नेतृत्व सौंपा व उनके सम्मान को सुनिश्चित किया है। मेहता के अनुसार ब्राह्मण को श्रेष्ठ मानने का कारण है कि वे ज्ञान और सत्य की खोज निःस्वार्थ भाव से करते हैं और अन्य लोगों के कल्याण के लिए चिंतित रहते हैं। वे यह भी कहते हैं कि यदि कोई ब्राह्मण अपने कर्तव्य पद से विमुख होता है तो वह ब्राह्मणत्व से वंचित हो जाता है और हजारों नरकों की यातना भोगता है। (मेहता, 2016ः 34—35) अतः मनु ने ब्राह्मण के लिए ज्ञान और संयम का जीवन निर्धारित किया है। ये भी सत्य है कि हर सभ्यता और संस्कृति में शिक्षित वर्ग ही उच्च वर्ग होता है और देश व समाज को दिशा प्रदान करता है। प्लेटो ने भी दार्शनिकों को समाज में सर्वोच्च स्थान दिया है। परन्तु वर्तमान युग की मान्यताओं में इस प्रकार की आलोचना अपेक्षित है क्योंकि प्रथम ये समानता का युग है और द्वितीय इस युग में 'अर्थ' 'ज्ञान' से और 'अधिकार' 'कर्तव्य' से अधिक महत्वपूर्ण है।

शूद्रों को अन्य वर्णों के समान नहीं रखा — आलोचकों के अनुसार मनु ने शूद्रों को अन्य वर्णों के समान नहीं रखा है। उक्त कथन सही है कि मनु ने समाज के सभी वर्गों को समानता नहीं प्रदान की है। मनु ने अधिकार और समानता के स्थान पर कर्तव्यों और उपयोगिता को अधिक महत्व दिया है। जो अधिक योग्य हैं वे उच्च हैं और जो कम योग्य हैं वो तुलनात्मक रूप से निम्न हैं। हालाँकि कुछ विद्वानों का मानना है कि मनु के आलोचकों को संस्कृत नहीं आती थी और इसलिए वो मनुस्मृति में क्या लिखा है ये जानने के लिए अंग्रेजी अनुवाद पर निर्भर थे जो विदेशी ईसाई शासकों द्वारा मैक्स मूलर के माध्यम से कराया गया था और मैक्स मूलर ने जान बूझ कर अपने अनुवाद में विसंगतियाँ उत्पन्न की जिससे सनातन हिन्दुओं में फूट डाली जा सके। इनके अनुसार मनु ने अस्पृश्यता की बात ही नहीं की है तथा मनु की वर्ण व्यवस्था में भी जन्म नहीं कर्म महत्वपूर्ण है। कई विद्वान ये भी मानते हैं कि मनुस्मृति में क्षेपक जोड़े गए हैं व उसको दूषित किया गया है। (पाधी, 2014ः 28) परन्तु उक्त सभी तर्कों के बावजूद मनुस्मृति में सभी वर्णों में समानता का अभाव तो दृष्टिगोचर है।

महिलाओं को पुरुषों की रक्षा में रखा है और समान नहीं— आलोचकों के अनुसार मनु ने महिलाओं को पुरुषों की रक्षा में रखा है और समान नहीं माना है। नारी के सन्दर्भ में मनु ने कहा है कि पूरे समाज की धुरी गृहस्थ धर्म है और गृहस्थ धर्म की धुरी नारी है। मनु के अनुसार नारी का सम्मान करना चाहिए खास तौर पर माँ, बहन और पुत्री का सम्मान आवश्यक है। मनु ये भी कहते हैं कि "स्त्रियों में और लक्ष्मी में कोई भेद नहीं है।" वे ये भी कहते हैं कि, "पुत्र और पुत्री समान हैं। इसलिए पिता

की आत्मा रूप पुत्री बैठी हो तो कोई दूसरा धन कैसे ले जाये? जो धन माता को दहेज में मिला हो वह 'कन्या' का ही है।" (द्विवेदी, 1917: 341) परन्तु मनु ये भी कहते हैं कि नारी को अरक्षित नहीं छोड़ना चाहिए। (सिन्हा, 2020) परन्तु उन्होंने स्पष्ट किया है कि नारी "विश्वासपात्र मनुष्यों से घर में रखवाली कराने से रक्षित नहीं होती किन्तु जो अपनी रक्षा आप ही करे वही सुरक्षित हो सकती है।" (द्विवेदी, 1917: 320) सच तो ये है कि नारी को रक्षा की आवश्यकता तो आज भी है। परन्तु ये भी सही है कि मनु ने नारी को पुरुष के समान नहीं माना है।

राजनीतिक विरोध– भारतीय लोकतंत्र में जातियां दल निर्माण, मत मांगने, प्रत्याशी चुनने, मतदान करने का आधार बन गयी है। अतः कुछ राजनीतिज्ञों व राजनीतिक दलों को मनुवाद के विरोध के नाम पर मत व सत्ता प्राप्त होती है और ये भी मनु के विरोध का एक कारण है। हालाँकि पिछले 1000 वर्षों से मनुस्मृति के आधार पर भारत की विधि व राजनीतिक व्यवस्था नहीं चल रही थी। उसके पूर्व भी राजकीय व्यवस्था तो राजाओं के अनुसार ही चलती थी। हाँ सामाजिक स्तर पर अवश्य कुछ अंशों में मनु की व्यवस्था का पालन हो रहा था। स्वतंत्रता के बाद जो नई राजनीतिक – विधिक व्यवस्था आई वो भी मनु पर आधारित नहीं है परन्तु मनु का विरोध जारी है।

योगदान

प्रथम भारतीय राजनीतिक चिन्तक – मनु ने सर्वप्रथम एक सुगठित और सुव्यवस्थित राजनीतिक व्यवस्था की रचना की। उन्होंने बताया कि राजा की उत्पत्ति कैसे हुई, राजा को राज्य किस प्रकार चलाना चाहिए, विदेश नीति कैसे चलानी चाहिए, न्याय कैसे करना चाहिए, करारोपण कैसे करना चाहिए। उन्होंने राजधर्म और दण्ड की भी व्याख्या की। मनु का राजा शक्तिशाली है परन्तु वह धर्म या विधि के आधीन है। (पाधी, 2014: 25) मनु ने 'राज ऋषि' राजा या 'दार्शनिक राजा' की स्थापना की है जिसका जीवन प्रजा की सेवा के लिए है, भोग विलास के लिए नहीं। उसने संप्रभुता, राजधर्म, लोककल्याणकारी राज्य, राष्ट्रीयता, करारोपण, परराष्ट्र सम्बन्ध आदि की विवेचना भी की है। मनु की राजनीतिक व्यवस्था यथार्थवादी और व्यावहारिक होने के साथ नैतिकतापूर्ण भी है।

विश्व के प्रथम विधि संहिताकार – मनुस्मृति को हिन्दू कानून की सम्पूर्ण व्यवस्था को प्रदान करने वाला माना जाता है और हिन्दुओं के विधि साहित्य में इसे एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ समझा जाता है तथा मनु को प्रथम विधिवेत्ता माना जाता है। मैकेंजी ब्राउन के अनुसार "पाश्चात्य विश्व के लिए मनुस्मृति अपने प्रकार का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। यह हिन्दू कानून पर सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ है।"

कर्तव्य आधारित व्यवस्था – मनु ने अधिकारों पर नहीं बल्कि कर्तव्यों पर बल दिया है क्योंकि जब राजा अपना कर्तव्य करता है तो प्रजा को उनके अधिकार मिल जाते हैं और जब प्रजा अपने कर्तव्य करती है तो राजा को उनके अधिकार मिल जाते हैं। इस प्रकार जब सब लोग अपने कर्तव्य करते हैं तो सभी को उनके अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। मनु ने सबसे पहले राजा के कर्तव्यों का उल्लेख किया है और राजा को उत्तरदायित्व दिया कि वह सुनिश्चित करे कि अन्य लोग अपना कर्तव्य पूरा करें क्योंकि मनु वैदिक सक्रिय कर्मयोग के समर्थक हैं और इसी लोक में सबल, सजग, सुविधापूर्ण मानव जीवन की प्रतिष्ठा करते हैं। (शर्मा और शर्मा, 1997: 21)

पूर्ण जीवन दर्शन ग्रन्थ – मनु ने राज्य की व्यवस्था से लेकर व्यक्ति के पूरे जीवन की व्यवस्था की है। यहाँ तक कि मनु ने मानव जीवन को 100 वर्षों का मान कर 25–25 वर्ष के चार आश्रमों में विभाजित किया है। ये हैं– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। प्रथम आश्रम ज्ञान प्राप्ति का, दूसरा आश्रम सांसारिक कार्यों का, तीसरा आश्रम गृह व लोभ त्याग का और चौथा आश्रम कठोर तपस्या द्वारा मोक्ष प्राप्ति का है। मनु ने 16 संस्कारों का भी वर्णन किया है। स्त्री व पुरुष के विभिन्न रिश्तों व भूमिकाओं में कर्तव्यों का भी वर्णन है। जिससे उसके वे सभी ऋण पूर्ण हों जिनका वर्णन सनातन ग्रंथों में ऋषि ऋण, देवऋण और पितृऋण के रूप में किया गया है। मनु ने उस प्राचीन काल के समाज ऋण का पूरा भुगतान किया, ये उनकी अनुपम देन है। (शर्मा और शर्मा, 1997: 21)

कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था का प्रावधान पर अस्पृश्यता का ना होना – डॉक्टर हिम्मत सिंह सिन्हा के अनुसार मनु स्मृति में वर्ण व्यवस्था जन्म आधारित न होकर कर्म आधारित है। विराट पुरुष अर्थात समाज के मुख से ब्राह्मण निकले का अर्थ है की जो मुख से ज्ञान देगा वो ब्राह्मण है, जो अपने बाहुबल से दूसरों की रक्षा करे वो क्षत्रिय होगा, जो समाज का भरण पोषण करेगा वो वैश्य होगा, जो अपने पैरों के बल पर पूरे समाज को संभालेगा वो शुद्र होगा क्योंकि पैर ही पूरे शरीर को उठा कर रखते है। मनु ने इन्हें समाज के चार अंग माना है और जिस प्रकार मानव शरीर के लिए हर अंग महत्वपूर्ण है उसी प्रकार समाज के लिए सभी वर्ण (अंग) महत्वपूर्ण हैं। सनातन धर्म में आदर देने के लिए पैरों को स्पृश करते हैं तो पैर निम्न नहीं हैं और विराट पुरुष के पैर तो कतई निम्न नहीं हैं। डॉक्टर हिम्मत सिंह सिन्हा के अनुसार मनुस्मृति में कहीं भी अस्पृश्यता का कोई उल्लेख नहीं आता। वर्ण व्यवस्था में भी सद्गुणों को सर्वोच्चता प्रदान की गई है। उनके अनुसार ब्राह्मण को अपने जीवन का एक चौथाई भाग वेद अध्ययन व गुरु सेवा में लगाना चाहिए। अगला एक चौथाई भाग गृहस्थ के रूप में सादगी व

संयमपूर्ण बिताना चाहिए। इस समय किसी को धोखा नहीं देना चाहिए। भिक्षु व अतिथि का सत्कार करना चाहिए। तत्पश्चात वानप्रस्थ व सन्यास आश्रम का पालन करना चाहिए। ये जीवन भोग विलास का नहीं है। (सिन्हा, 2020)

निष्कर्ष

मनुस्मृति की प्रशंसा अनेक भारतीय और विदेशी विद्वानों ने की है, जिसमें मैडम ब्लावेस्की, देर्रेत्ते व जर्मन दार्शनिक नीत्शे प्रमुख हैं। नीत्शे ने मनुसंहिता को बाइबिल की अपेक्षा कहीं अधिक उत्कृष्ट, बौद्धिक तथा परिष्कृत पुनीत ग्रन्थ माना है। (शर्मा और शर्मा, 1997: 21) अप्पादोरई ने तो कहा है कि मनु ने साइंस ऑफ पॉलिटिक्स (राजनीति का विज्ञान) दिया है। (अप्पादोरई, 2002: 57) मनुस्मृति का अनुवाद विभिन्न भाषाओ में किया गया जैसे कि अंग्रेजी, जर्मन, रुसी और पुर्तगाली। (पाधी, 2014: 27) अंग्रेज शासकों ने विलियम हंटर व मैक्स मूलर द्वारा विकृत मनुस्मृति तैयार करवाई जिससे भारतवासियों में मनुस्मृति के प्रति वितृष्णा डाली जा सके। (दीक्षित, 2021) अंग्रेज इस कार्य में सफल भी रहे। उन्होंने सनातन धर्मावलम्बियों में सफलतापूर्वक फूट डाली। स्वतंत्रता के बाद भी मनुस्मृति विवादों में रही। पर शायद ये होना ही था क्योंकि सनातन धर्म की मान्यता के अनुसार कलियुग में धर्म के तीन चरण सत्य, तप, पवित्रता, नहीं बचेंगे, बचेगा केवल दान तथा कलियुग में लोग धर्म व धर्मग्रंथों पर विश्वास करना छोड़ देंगे तथा धर्मग्रंथों की प्रामाणिकता मांगेंगे।

सन्दर्भ

1. अप्पादोरई, ए. (2002) पोलिटिकल थॉट्स इन इंडिया, खामा पब्लिशर : दिल्ली।
2. द्विवेदी, पंडित गिरिजाप्रसाद (1917) मनुस्मृति, मुंशी नवल किशोर छापाखाना : लखनऊ।
3. दीक्षित,राजीव (2021) https://www-youtube-com/watch\v=RZYa4tBFkQQ, देखा 15.5.2021।
4. जैन, पुखराज (2012) प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक, साहित्य भवन पब्लिकेशन : आगरा।
5. मेहता, जीवन (2013–14) राजनीतिक चिंतन का इतिहास, एस बी पी डी पब्लिशिंग हाउस : आगरा।
6. मेहता, वि. आर. (2016) भारतीय राजनीतिक चिंतन के आधार, मनोहर पब्लिकेशन : दिल्ली।
7. पाधी, के एस (2014) इंडियन पोलिटिकल थॉट, पी एच आई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड : दिल्ली।
8. सिन्हा, हिम्मत सिंह (2020) 'मूल मनुस्मृति और डॉ अंबेडकर का वर्णवाद' दी क्वेस्ट, (31.3.2020)
9. https://www-youtube-com/watch\v=po8lgmyGlw4, देखा 26. 5. 21।
10. शर्मा और शर्मा (1997) भारतीय राजनीतिक चिंतन, एटलान्टिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर : नई दिल्ली।
11. सिंह और रॉय (2011) इंडियन पोलिटिकल थॉट, पीअरसनः नई दिल्ली।